IOSR Journal Of Humanities And Social Science (IOSR-JHSS)
Volume 28, Issue 7, Series 2 (July. 2023) 66-69
e-ISSN: 2279-0837, p-ISSN: 2279-0845.
www.iosrjournals.org

दलित अस्मिता से जुड़े तथ्यों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

शैलेन्द्र कुमार
शोध छात्र, राजनीति शास्त्र विभाग, बी. एन. एम. यू. मधेपुरा, बिहार

सार,

विभिन्न अनुभागों एवं उप–अनुभागों में बँटे अछूत एवं दलित लोगों का वर्णन करने से पूर्व यह जानकारी प्राप्त करना अति आवश्यक होगा कि इन वर्गों का वातावरण कैसा था? लेकिन इसके लिए हमारे अध्ययन के पूर्व यह जान लेना ज्यादा महत्वपूर्ण होगा कि उलझनावली वर्ण–व्यवस्था तथा जाति–व्यवस्था में इनका प्रादुर्भाव कब और कैसे हुआ? वास्तव में जाति एवं वर्ण–व्यवस्था पर एक सरसरी निगाह इस संबंध में डालने से यह महत्वपूर्ण हो जायेगा तथा वैदिक, उत्तर–वैदिक ग्रन्थों, पुराणों, धर्मशास्त्रों, मनु, नारद एवं अन्य स्मृतियों में सन्निहित जानकारी से अछूत एवम् दलितों के पूर्ववर्तियों के स्तरों को समझने–बूझने में विशेष सहूलियत होगी।

विस्तार,

धरती पर मानव का पदार्पण प्लाइस्टोसीन युग में हुआ। पृथ्वी पर आते ही इसे अनेक कठिनाइयों से जूझना पड़ा। पहले इसे आर्थिक कठिनाइयाँ उत्पन्न हुई अर्थात् भूख मिटाने की समस्या तथा दूसरी कठिनाइयाँ रहने–सहने एवं पहनने की। मानव धीरे–धीरे अपनी समस्याओं का समाधान करते हुए आगे बढ़ता गया। इसमें हजारों वर्ष लगे तथा कई काल हुए। पुरापाषाण काल में मनुष्य असभ्य था। वह न तो बोलना जानता था और न ही कपड़ा पहनना। वह अपना जीवन शिकार करके, मछली मारकर तथा प्रकृति में पाये जाने वाले फलों एवं भोजन इकट्ठा करके जीता था। जब मनुष्य आग जलाना सीखा तो वह माँस को पकाकर खाने लगा तथा ठंड से बचने के लिए वह रात में जंगल की लकड़ियाँ बटोरकर उसे जलाकर अपना जीवन बिताने लगा।

मध्यपुरापाषाण काल में मनुष्य अनेक प्रकार से सभ्य बनने की ओर अग्रसर होने लगा। अब वह शिकार करने के लिए हथियार और औजार का इस्तेमाल करने लगा। आग के आविष्कार ने उसे आगे बढ़ाने में काफी मददगार साबित हुआ। आग के माध्यम से जंगलों को साफ करके उस पर खेती करने लगा किन्तु उत्तरपाषाण काल में मनुष्य पूर्णतः सभ्य बन गया। वह खेती करने लगा, रहन–सहन, खान–पान, उठने–बैठने, भले–बुरे आदि का बोध हो गया। इसी समय गाँव का विकास हुआ। व्यक्ति आपस में संगठित होने लगे तब आगे चलकर समाज नामक संस्था का विकास हुआ। इस समय तक किसी भी प्रकार की वर्ण–व्यवस्था अस्तित्व में नहीं थी।

सिन्धुघाटी सभ्यता में भी हमें किसी प्रकार की जाति एवं वर्ण–व्यवस्था देखने को नहीं मिलती है। किन्तु इस बात से इन्कार भी नहीं किया जा सकता कि वहाँ जाति व्यवस्था नहीं थी। अगर जाति व्यवस्था नहीं थी तो इतिहासकार कैसे कहते हैं कि वहाँ की प्रशासनिक व्यवस्था का संचालक पुरोहित अथवा व्यापारी रहे होंगे। अतः हम अभी तक सिन्धु सभ्यता की लिपि को स्पष्ट रूप से नहीं पढ़ पाए हैं इसलिए इस तरह की भ्राँति अभी तक बनी हुई है। अगर हम लिपि को पढ़ लेंगे तो बात साफ हो जायेगी।

जाति और वर्ण संरचना वैदिक काल के दौरान विकसित हुई, हालांकि वैदिक युग के अंत तक, इसने कहीं अधिक परिष्कृत आकार ले लिया था। इसका फायदा ब्राह्मणों ने उठाया। उन्होंने समाज में अपनी उत्कृष्टता, प्रतिष्ठा, परोपकार, लाभ, सुरक्षा आदि के संदर्भ में जाति व्यवस्था का प्रस्ताव रखा। बाद में, यह एक जाति व्यवस्था में विकसित हुआ, जिससे कई उप–जातियाँ निकलीं। हालाँकि, वर्ण–व्यवस्था एक भ्रामक शब्द है जिसका उपयोग ब्राह्मण यह धारणा बनाने के लिए करते हैं कि यह एक दैवीय संस्था है जिसे बदला नहीं जा सकता। गीता के लेखक ने कृष्ण को यह कहते हुए उद्धृत किया कि उन्होंने (भगवान ने) चार वर्णों की स्थापना उनके लक्षणों और गतिविधियों के आधार पर की थी। सबसे हालिया ऐतिहासिक रहस्योद्घाटन यह है कि भारत में आर्यों के आने से पहले वैश्य और शूद्रो (अछूत) मौजूद थे, जबकि क्षत्रिय और ब्राह्मण बाद में उभरे। शूद्रों, या अछूतों के संदर्भ में, वे उस समय दलित नहीं थे, लेकिन सम्मानित कारीगर थे। इन सभी भ्राँतियों के बावजूद भी हम जानते हैं कि अनेक भूमि एवं सम्प्रदायों में अस्तित्व बनाये रखनेवाले सामाजिक अनुभागों के बावजूद जाति–व्यवस्था भारत के लिए अनूठी विलक्षण है। सिर्फ हिन्दू होना पर्याप्त नहीं है, और न ही इसकी विभिन्न शाखाओं में बँटा होना, अपितु उप–जाति, यहाँ तक कि एक अनुभाग अथवा उपजाति के उप–अनुभाग के साथ इसकी कठोरता एवं अन्य उपयोगिताएँ आदि भी विशेष मायने रखते हैं। यही कारण है कि परिवर्तन की हिन्दूवाद में कोई

जगह नहीं है और यद्यपि कानूनन इस पर हमेशा प्रतिबन्ध भी नहीं है। इस्लाम एवं इसाई धर्म की तरह हिन्दूवाद भी मानवता का एक वृहद पृष्ठ है जहाँ पूर्णता प्राप्त करने के लिए शामिल होना पर्याप्त है। व्यक्ति के लिए एक निश्चित अनुभाग का होना जरूरी हो जाता है। जिसका रहन–सहन, तौर–तरीके एवं अधिकार तथा कर्तव्य आदि सिर्फ धर्म परिवर्तन होने से उपलब्ध नहीं हो जाता, अपितु वंशानुगत ढंग से प्राप्त किया जाता है। दूसरे शब्दों में जन्म इसका निर्णायक कारण होता है। यही कारण है कि हाल में बहुत बड़ी संख्या में दूसरे सम्प्रदाय के लोगों का हिन्दू धर्म में जो परिवर्तन हुआ, इससे उन्हें जगह–जगह यथा एक–दूसरे के साथ खाने–पीने अथवा शादी–ब्याह आदि करने में परेशानियाँ उठानी पड़ी। मतलब हिन्दू धर्म में उनके लिए कोई जगह नहीं रहने के कारण उन्हें वहीं वापस लौटना पड़ा जहाँ से वे आए थे।

जाति व्यवस्था विभिन्न कारणों से बनी एक वृहत् परिधि है। भारतीय इतिहास के विभिन्न कालों की प्रजाति तथा आक्रमण एवं संस्थाओं तथा संहिताओं ने समाज पर अपनी अमिट छाप छोड़ दी है। इन तमाम परिधियों के विश्लेषण तथा विशेषताओं की व्यवस्था की गयी है। अर्थशास्त्रियों ने ठीक ही कहा है कि जब किसी एक वर्ग को सबके साथ मिलजुलकर, खाने–पीने अथवा रस्म–रिवाज पूरा करने की मनाही दूसरे वर्गों द्वारा की जाती है तो वह वर्ग स्वमेव जाति का रूप धारण कर लेता है। भारतीय जातियाँ सब में सर्वथा अलग है, जो दूसरी जातियों के साथ शादी–ब्याह अथवा खान–पान पर निषेध लगाती है। किसी भी व्यक्ति को मर्यादित सीमा के अन्तर्गत खान–पान तथा शादी–ब्याह अपनी उपजाति के अन्तर्गत करना होता है। प्रत्येक जाति एवं उपजाति के लिए अपनी गरिमा बनाए रखने के अपने ही नियम, कानून, कायदे एवं तरीके हैं। यही व्यवस्था हाल–फिलहाल भारतीय जाति व्यवस्था में सन्निहित है, जहाँ शूद्रों अर्थात् अछूत, दलित एवं निम्नतर लोगों का अपना अपरिहार्य स्थान है और इन तमाम बातों का वर्णन वृहद् रूप में मनु एवं अन्य स्मृतियों एवं ग्रंथों के पृष्ठों में किया गया है। किन्तु प्रश्न यह उठता है कि क्या यही स्थिति, यही व्यवस्था पहले भी थी? दूसरे शब्दों में मनु के अनुसार पूर्ववर्ती अधिकार क्या है?

शूद्रो अर्थात् अछूत, दलित कब जाति के रूप में परिणत हुआ इसकी जानकारी प्राप्त करने के लिए हमें वर्णाश्रम की गहराई में जाना होगा। इसके लिए हमें यह भी जानना होगा कि आर्य कब भारत आए। आने का उद्देश्य क्या था? ये किस जाति एवं कबीले के रूप में आए, इनका व्यवसाय क्या था? तथा भारतीय सामाजिक व्यवस्था में कैसे परिणत हुए और अपनी कलाकृतियों एवं संस्कृतियों का अमिट छाप कब छोड़े। अपने ग्रंथों की रचना कब और कहाँ किए। इन सारी बातों की जानकारी प्राप्त करने पर ही हम अछूत एवं दलित के बारे में विस्तृत रूप से व्याख्या कर सकते हैं। भारत में आर्यों का प्रवेश 1500 ई0 पूर्व के आसपास हुआ। वे सप्त सिन्धु के घास के मैदान में अपनी गौएँ चराने लगे। आर्य भी एक सामूहिक भाषाई नाम है, क्योंकि आर्यों की सभी शाखाओं की भाषा में बहुत कुछ समानता है। अनुमान यह है कि वे सभी शाखाएँ किसी एक मूल स्थान, सम्भवतः हिन्दुकुश के पास से यूरोप और एशिया में फैली भारतीय आर्य ईरान से भारत आये। इनके अलग–अलग कबीले या जन थे। उनमें कोई श्रम विभाजन नहीं था। कोई पुरोहित या ब्राह्मण नहीं था। ये पूर्णतः पशुपालक थे। साथ ही साथ लकड़ी, चमड़े आदि के सामान स्वयं बनाते थे। चरवाहे के रूप में सदा गौओं के साथ एक स्थान से दूसरे स्थान को जाते रहते थे। अतः उनकी कोई स्थायी बस्ती नहीं थी। ऐसी स्थिति लगभग 1000 ई0 पूर्व तक रही। उनके युद्ध गौओं को लेकर होते थे। पुरातात्विक खुदाई से भी 1000 ई0 पूर्व तक के किसी स्थायी बस्ती के अवशेष नहीं मिले हैं।

आमतौर पर यह कहा जाता है कि आर्यों ने सर्वप्रथम भारत में प्रवेश पंजाब प्रदेश की ओर से किया तथा 1500–1000 ईस्वी पूर्व में ही उन्होंने अपने महत्वपूर्ण ग्रंथ (ऋगवेद) की रचना की। इसी ग्रंथ के माध्यम से इनकी क्रिया–कलापों एवं शूद्रों, अछूत एवं दलित की जानकारी मिलती है।

जाति व्यवस्था तथा वर्णाश्रम में शूद्रों (अछूत एवं दलित) का वर्णन सर्वप्रथम ऋग्वेद के प्रसिद्ध पुरुष सूक्त के अन्तिम श्लोक में किया गया है ।

'ब्राह्मणेस्य मुखमासीद बाहू राजन्यः कृतः। उस तदस्थ यदृश्या पेभ्यों शूद्रों इयजायत'

ब्राह्मणों की उत्पत्ति मुँह से, क्षत्रियों की बाहुओं से, वैश्यों की जाँघों से एवं शूद्रों की पावों से हुई है। इसकी पुनरावृत्ति अथर्ववेद के उन्नीसवें भाग में हुई है।

ऋग्वेद के इस खण्ड को बढ़ा–चढ़ा कर एवं अतिशयोक्तिपूर्ण वक्तव्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है जो मान्य एवं अमान्य दोनों ही हो सकता है। यद्यपि कि तथ्य यही है कि यह महत्वपूर्ण प्रपत्र के अंतिम अनुभाग में अवस्थित है। फिर भी इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि इन तमाम वाक्यातों के बावजूद पुस्तक वैदिक है और जिसको बार–बार यजुर्वेद के वाजसनेयी संहिता (31,11) में दुहराया गया है और जो इसकी प्राचीन विशेषताओं को सत्य रूप में स्थापित करता है। प्राचीन समय के महान् संतों की जीवनी एवं उन्हें दान–दक्षिणा देनेवाली राजशाही इस बात को प्रमाणित करती है कि ऋगवेद की शुरुआत के समय से ही ब्राह्मण एवं क्षत्रिय जातियों का अस्तित्व था और विश्व अर्थात् सर्वमान्य की विशालता इस बात को भी प्रमाणित करती है कि इस समय 'वैश्य' लोगों का भी अस्तित्व था। विश का अर्थ बस्ती। बस्ती या विश में रहने वाले वैश्य कहलाते थे।

आर्य शासक इन अनार्य वैश्यों से खेती की उपज का एक भाग 'कर' या बलि के रूप में प्राप्त करते थे, जिससे वे अपना खर्च चलाते थे। यज्ञ में बलि दिए जाने वाले लोगों की सूची में चारो वर्णों के पश्चात् विभिन्न प्रकार के पेशेवर लोगों का स्थान आता है, यथा, रथ निर्माता, बढ़ई, कुंभकार, लोहार, सर्राफ, चरवाहा, गड़ेरिया, किसान, मद्यनिर्माता, मछुआरा और शिकारी आदि को वैश्य अथवा शूद्रों की कोटि में रखा जा सकता है। निषाद, किरात, पर्णक, पौलकस आदिबद्ध संभवतया शूद्रों समझे जाते थे। इस सूची से पता चलता है कि शिल्पीकारों की संख्या बढ़ गई थी और लोग मानने लगे थे कि विभिन्न प्रकार के शिल्पी और मजदूर शूद्रों थे।

विश्व में कृषि से सम्बन्धित कारीगर भी रहते थे, जो सम्भवतः शूद्रों कहलाते थे। पर ऐसा भी प्रमाण मिलता है कि वे खेती भी करते थे। एक पूर्वकालीन उपनिषद् में शूद्रों को 'पूषन' या पोषक कहा गया है जो ऐसी उपाधि (पोषविष्णु) है जिसका प्रयोग जैमिनीय ब्राह्मण में वैश्यों के लिए किया गया है। इससे संकेत मिलता है कि वह जमीन जोतनेवाला था और समाज को पोषाहार प्राप्त कराने के उद्देश्य से उत्पादन कार्य में लगा रहता था। संभवतया अपने परिवार का पोषण वह पशुपालन और खेती से करता था। अथर्ववेद में 'रथकार' और कर्मार को स्पष्टतः राजा के इर्द–गिर्द रहनेवाले विश के रूप में चित्रित किया गया है। धातुकर्म और रथनिर्माण में उनकी नैपुण्यजन्य अपरिहार्यता के कारण भी प्राचीन समाज में इनका महत्व बढ़ गया होगा। इतना ही नहीं यह भी असंभव नहीं कि इन शूद्रों रत्निनों के कारण शूद्रों वर्ण के अन्य वर्णों को भी परोक्ष रूप में महत्व मिल गया होगा।

वैदिक काल में शूद्रों (अछूत एवं दलित) का अस्तित्व था अथवा नहीं इस पर संदेह व्यक्त किया जाता है। यहाँ तक कि बहुतों द्वारा दावा किया गया है तथापि इनकी वैदिक उत्पत्ति के संबंध में शायद ही निन्दा अथवा आलोचना की जा सकती है। ऋग्वेद के जिस पुरुष सूक्त में शूद्रों की उत्पत्ति विराट पुरुष के पाँव से बतायी गयी है, वह खण्ड भले ही थोड़े विलम्ब का हो सकता है, किन्तु श्वेत यजुर्वेद के उपर वर्णित कम से कम समय के साथ की लगती है। भले ही अन्य श्लोकों की तरह इसे भी ऋग्वेद से लिया गया हो। इतना बिना किसी शक के अवश्य कहा जा सकता है कि ऋग्वेद काल में भी शूद्रों थे किन्तु जहाँ तक निम्नतर लोगों का सवाल है, इसके अस्तित्व के संबंध में कोई जानकारी हम पवित्र ऋग्वैदिक ग्रंथ ऋग्वेद में नहीं पाते। सेनार्ट ने ठीक ही लिखा है कि सामाजिक समूहों के रूप में वास्तव में जाति व्यवस्था की उत्पत्ति इंडो–यूरोपियन इतिहास के संयुक्त आर्य ईरानी काल में हुई थी क्योंकि फारसी के तीन उच्च वर्गीय नाम भारतीय नाम से मिलते–जुलते हैं। सिर्फ कमी है तो वह शूद्रों की जिनके बारे में लगता है कि भारतीय जाति के सामाजिक अंग के रूप में होंगे।

अब प्रश्न है कि क्या शूद्रों कोई अलग इकाई के रूप में थे अथवा क्या स्वतंत्र वैदिक आर्य जाति से उत्पन्न वह कोई इकाई था?

शूद्रों आर्य थे या आर्य आगमन से पहले की जनजाति थे और यदि वे आर्य थे तो भारत में किस समय आए। शूद्रों जनजाति के मानव जातीय वर्गीकरण के विषय में परस्पर विरोधी विचार व्यक्त किए गए हैं। पहले यह माना जाता था कि पहले–पहल जो आर्य आए उनमें से कुछ शूद्रों जनजाति के थे बाद में यह माना जाने लगा कि शूद्रों आर्यपूर्व जनों की एक शाखा थे किन्तु दोनों विचारों में से किसी के भी पक्ष में कोई सबल प्रमाण नहीं है। उपलब्ध तथ्यों के आधार पर सोचा जा सकता है कि शूद्रों जनजाति का आर्यों के साथ कुछ सादृश्य था। शूद्रों की चर्चा हमेशा अमीरों के साथ हुई है जो आर्यों की एक बोली 'आमीरी' बोलते थे। ब्राह्मण काल में शूद्रों आर्य की भाषा समझने में समर्थ थे, जिससे परोक्ष रूप में सिद्ध होता है कि वे आर्यों की भाषा जानते थे। इतना ही नहीं, शूद्रों को आर्यपूर्व लोगों यथा शबर आदि की सूची में कभी शामिल नहीं किया गया है।

महाभारत में आमीरों के साथ शूद्रों की चर्चा बार–बार जनजाति के रूप में हुई है, जिससे ईसा पूर्व दसवीं शताब्दी की परंपराओं का आभास मिलता है। इस महाकाव्य में शूद्रों कुल 'क्षत्रिय और वैश्य कुलों' के साथ, इसका उल्लेख किया गया है। 'शूद्रों' जनजाति का वर्णन करने के लिए 12 अमीर, तुखार, पहलवद, दर्द आदि का उपयोग किया जाता है, और वर्ग और परिवार स्पष्ट रूप से अलग हो जाते हैं।

–: संदर्भ :–

1. चौहान, बी. आर. सेड्यूल कास्ट एण्ड एजुकेशन, मेरठ, अणु पब्लिकेशन्स, 1967

2. जोशी, श्री निवास डी., एजुकेशनल प्रोब्लम ऑफ सेडुल्ड कास्ट एण्ड सेडुल्ड ट्राइब्स ऑफ बड़ौदा डिस्ट्रीक्ट, (पी. एच. डी. थेसिस, बड़ौदा, एम. एस. यूनिवसिटी ऑफ बड़ौदा, 1978

3. जेलनार, ए. ए., एजुकेशन इन इंडिया, न्यूयार्क, बुकमेन एशोसियट्स, 1951 61. झा. एम. एल., अनटचैबिलीटि एण्ड एजुकेशन, मेरठ, ममता पब्लिकेशन, 1974

4. डाडवेल, एच. एच., दी कैम्ब्रीज हिस्ट्री ऑफ इंडिया, खण्ड 4 (1947–1958), दिल्ली, एस. चांद एंड कम्पनी।

5. तारा चंद, हिस्ट्री ऑफ फ्रीडम इन इंडिया, भोलूम–1, दिल्ली, पब्लिशर्स डिविजन, 1965

6. देसाई, ए. आर. सोशल बैक ग्राउण्ड ऑफ इंडियन नेशनलिज्म, बम्बई, पोपुलर बुक डिपो, 1959

7. देसाई, डी. एम., कम्पलसरी एजुकेशन इन इंडिया, बम्बे, इंडियन इन्स्टीयूट ऑफ एजुकेशन, 1953

8. दीक्षित, एस. एस., नेशनलिज्म एण्ड इंडियन एजुकेशन, दिल्ली, स्टेलग प्रा. लि, 1961